Research Paper Education

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शैक्षिक सुधार – समालोचनात्मक अध्ययन

Swatantrata Prapti Ke Pashchat Shaikshik Sudhar- Samalochanatmak Adhyayan

LALIT MOHAN JOSHI Research Scholar, Faculty of Education, Kumaun University, S.S.J. Campus Almora, Uttarakhand.

KEYWORDS

शिक्षा किसी भी आधुनिक, सभ्य, उन्नत और विकसित कहे जाने वाले समाज का अनिवार्य लक्षण है और इसके बिना प्रगति कभी भी पूर्ण एवं बहुआयामी नहीं हो सकती। एक शिक्षित व्यक्ति शिक्षित राष्ट्र ही प्रगति के दुर्गम पथ पर यात्रा कर पाने में समर्थ होता है। शिक्षा पर विचार करते समय कुछ मूलभूत प्रश्न स्वाभाविक रुप से उठते हैं यथा शिक्षा क्या है? इसके उद्देश्य क्या हैं? शिक्षित राष्ट्र की क्या विशेषताएं हैं? एवं शिक्षित समाज के लक्ष्यों को प्राप्त करने में भारत किस सीमा तक सफल हुआ है? शिक्षा और साक्षरता में क्या अंतर है? मूलभूत स्तर तक प्राथमिक शिक्षा का प्रवाह सुगम बनाने में हम कहाँ तक कामयाब हुए हैं? और कितनी दूरी तय करना अभी शेष है? इस संबंध में सरकार, अभिभावकों व समाज के क्या दायित्व हैं? और वे इन दायित्वों के निर्वहन में कहाँ तक सफल रहे हैं? तथा एक शिक्षित व्यक्ति के अपने राष्ट्र के प्रति क्या कर्तव्य हैं? भूमंडलीकरण एवं मुक्त अर्थव्यवस्था के इस दौर में यह प्रश्न और भी अधिक रोचक, महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हो जाते हैं। विशेष तौर पर जब प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा पर साथ–साथ महत्वपूर्ण वाद–विवाद जारी हों तब इन प्रश्नों पर गंभीरता पूर्वक विचार करना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में गुणात्मक सर्वेक्षण अनुसंधान विधि को प्रयुक्त करते हुए भारतीय शिक्षा के संवैधानिक परिप्रेक्ष्य एवं शिक्षा से संबंधित नीतिगत निर्णयों का उपरोक्त प्रश्नों के आलोक में समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

भारत का संविधान भारतीय जनमानस के जीवन दर्शन को प्रतिबिंबित करता है। भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा को व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का साधन माना गया है। संविधान निर्माण करने वाले प्रबुद्ध विद्वजनों ने इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर संविधान में शिक्षा हेतु अनेक उपबंधों की व्यवस्था की है। इन उपबंधों के माध्यम से संविधान निर्माताओं ने शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति हेतु सर्वसुलभ कराने का हर संभव प्रयत्न किया है। संविधान निर्माताओं का विश्वास था कि यदि राष्ट्र को शीघ्रातिशीघ्र विकास के पथ पर अग्रसारित करना हो तो इसके लिये केवल एक ही साधन उपलब्ध है और वह साधन है शिक्षा। शिक्षा एवं साक्षरता के प्रचार प्रसार तथा शिक्षा के प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक के स्तर में गुणात्मक एवं मात्रात्मक सुधार लाने के लिये स्वतंत्रता के पश्चात विभिन्न आयोगों एवं शिक्षा नीतियों का गठन किया गया इनमें, "विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग", "माध्यमिक शिक्षा आयोग", "शिक्षा आयोग" "नयी शिक्षा नीति" विशेष रुप से उल्लेखनीय है। इन सभी आयोगों ने अपने पूर्वनिर्धारित कार्यक्षेत्र के अनुसार शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र यथा उद्देश्य, अवधि, पाठ्यक्रम, माध्यम, शिक्षण विधियों एवं परीक्षाओं के संबंध में महत्वपूर्ण सुझाव दिये जिससे शिक्षा के गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनो पक्षों में वृद्धि की जा सके। संप्रग सरकार द्वारा लिये गये शैक्षिक नीतिगत निर्णय इसी क्रम में महत्वपूर्ण हैं। परंतु प्रतिबद्धता एवं एवं जागरुकता के अभाव, राजनैतिक उदासीनता, स्वार्थ, आर्थिक संसाधनों के अभाव एवं कुछ सीमा तक इन सुझावों में ही व्यावहारिकता के अभाव के कारण इन सुझावों में से अधिकांश को लागू नहीं किया जा सका। इस कारण शिक्षा व्यवस्था में विहित दोष तब से लेकर अब तक यथाविद्यमान ही हैं।

शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संविधान में शिक्षा से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण उपबंधों की व्यवस्था की है। साक्षरता के महत्व को स्वीकार करते हुए नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 45 के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया तथा इसे आगामी 10 वर्षों अर्थात 1960 तक प्राप्त करने का निश्चय किया गया परंतु राजनैतिक उदासीनता, प्रतिबद्धता का अभाव, आर्थिक संसाधनों की कमी एवं रुढ़िवादी दृष्टिकोण के कारण संविधान लागू होने के लगभग 60 वर्षों बाद भी इसे प्राप्त नहीं किया जा सका है। शिक्षा व्यवस्था के इन दोषों को दूर करने के लिये समय समय पर पंचवर्षीय योजनाओं, विशेष योजनाओं, विशेष अभियानों तथा विशेष मिशनो के अंतर्गत विशेष व्यवस्था की गई यथा प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में महिला शिक्षा के प्रसार एवं वृद्धि हेतु उपयुक्त मात्रा में धनराशि का प्रावधान रखा गया।

साक्षरता मनुष्य के लिए वरदान है तो निरक्षरता अभिशाप है। भारत में अभी भी लगभग 35 प्रतिशत जनसंख्या निरक्षर है। इसमें अधिकांश महिलाएं हैं। पं0 जवाहर लाल नेहरु ने भी महिला शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा था– "एक पुरुष की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है जबकि महिला की शिक्षा पूरे परिवार की शिक्षा है।" महिला शिक्षा के क्षेत्र में किये गये विशेष प्रयासों के परिणामस्वरुप महिलाओं की साक्षरता दर 2001 में 54.16 प्रतिशत हो चुकी है जो कि इससे पूर्व 1951 में मात्र 8.86 प्रतिशत थी। इन्ही प्रयासों के परिणामस्वरुप ही आज उन सभी क्षेत्रों को जिन पर कि पूर्व में मात्र पुरुषों का ही एकाधिकार माना जाता था यथा तकनीकी वैज्ञानिक क्षेत्र, कानून, प्रतिरक्षा, खेलकूद, राजनीति इत्यादि में महिलाओं ने भी सफलतापूर्वक अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। परन्तु इस संबंध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ऐसी महिलाओं की संख्या उनकी सम्पूर्ण जनसंख्या के अतिसूक्ष्म क्षेत्र का ही प्रतिनिधित्व करती है। अभी तक भी महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे हैं। यद्यपि लैंगिक अंतर पूर्व की तुलना में कम हुआ है जो कि इस क्षेत्र में सफलतापूर्वक अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। परंतु इस संबंध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ऐसी महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे है। यद्यपि लैंगिक अंतर पूर्व की तुलना में कम हुआ है जो कि इस क्षेत्र में पुरुषों से पीछे हैं। यद्यपि लैंगिक अंतर पूर्व की तुलना में कम हुआ है जो कि इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के प्रति आशान्वित करता है।

महिलाओं की शिक्षा में निर्धनता, सामाजिक, सांस्कृतिक विसंगतियाँ एवं सामाजिक कुरीतियाँ प्रमुख बाधा है। भारत में अभी भी लगभग 26 करोड़ जनसंख्या गरीबी रेखा स नीचे का जीवन व्यतीत कर रही है। जिस कारण यह परिवार शिक्षा को अपनी प्राथमिकता में सम्मिलित नहीं कर पाते यदि कभी उन्हें इस प्रकार के अवसर प्राप्त होते हैं तो भी शिक्षा प्राप्त करने के लिये बालिकाओं की अपेक्षा बालको को तरजीह दी जाती है। निर्धन परिवारों में व्यक्ति की सर्वप्रथम आवश्यकता अन्नोपार्जन होती है। ऐसे में माता–पिता का दृष्टिकोण यह होता है कि उनके बच्चे चाहे वह बालक हो या बालिका कुछ न कुछ कमा कर लायें और परिवार के भरण–पोषण में योगदान करें। यद्यपि यह योगदान बहुत अधिक तो नहीं होता परन्तु दो जून की रोटी की व्यवस्था में वह योगदान महत्वपूर्ण स्थान रखता है। और इस प्रकार का योगदान शिक्षा का परित्याग करके ही प्राप्त हो सकता है। महिला शिक्षा में पुरुष प्रधान मानसिकता भी बाधक है। इस संबंध में अतीत से ही यह घिसा– पिटा तर्क दिया जाता है कि आखिर बालिकाओं को पढ़ाने की क्या आवश्यकता है क्योंकि उन्हें विवाह के उपरांत अंततः घर ही तो संभालना है और घर गृहस्थी के कार्यों को सीखने के लिए पढ़ना–. लिखना आवश्यक नहीं है। कुछ पुरुष प्रधान परिवार आज भी इस रुढ़ि से चिपके हुए हैं कि कन्याएं पराया धन हैं इसलिये उनकी शिक्षा पर खर्च करना व्यर्थ है और पढ़ी–लिखी कन्या हेतु सुयोग्य वर प्राप्त होना भी उनके लिए एक प्रमुख समस्या है। उपरोक्त के अतिरिक्त कम आयु में विवाह कर दिये जाने तथा विद्यालय एवं घर से बाहर अभद्र व्यवहार का सामना करने के कारण भी महिलाओं की शिक्षा सुचारु ढ़ंग से नहीं चल पा रही है। अधिकांश परिवारों में तो अब भी बालिकाओं का अधिकांश समय अपने छोटे भाई–बहनों की देख रेख व घर के दैनिक कार्यों में व्यतीत होता है क्योंकि माता एवं पिता दोनो परिवार के भरण–पोषण हेतु परिश्रम कर रहे होते हैं।

आज देश के सम्मुख कुछ प्रमुख समस्याएं विद्यमान हैं, ये हैं अशिक्षा, निर्धनता एवं जनसंख्या वृद्धि और इन समस्याओं का समाधान महिला शिक्षा द्वारा ही संभव है क्योंकि शिक्षित महिला शिक्षा के महत्व को समझते हुए अपने बालकों एवं बालिकाओं को शिक्षित करने का प्रयत्न तो करेगी ही साथ ही जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों को समझते हुए जनसंख्या के नियंत्रण में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगी जिससे अशिक्षा, निर्धनता एवं जनसंख्या वृद्धि के दुष्चक्र को रोकने में सफलता अवश्य प्राप्त हो सकेगी।

संविधान में शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु पर्याप्त व्यवस्था की गई है परन्तु इसके पश्चात भी यह बड़े दुर्भाग्य एवं निराशा का विषय है कि पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त करने की जो समय–सीमा संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के अन्तर्गत अर्थात 1960 में रखी गई थी उस लक्ष्य को हम संविधान लागू होने के 60 वर्षों के बाद भी प्राप्त नहीं कर पाये हैं। ठीक यही स्थिति अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों, भाषायी व धार्मिक आधार पर घोषित अल्पसंख्यकों हेतु किये गये विशेष प्रावधानों की है। यद्यपि यह सत्य है कि इन व्यवस्थाओं से शैक्षिक क्षेत्र में बढ़ोत्तरी प्रदर्शित हुई है। परन्तु यदि स्थिति का सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि उपरोक्त व्यवस्था जिन वर्गों को ध्यान में रखकर तैयार की गई थी उन वर्गों को वास्तव में इसका नाममात्र का भी लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है क्योंकि इस व्यवस्था का वास्तविक लाभ तो उन व्यक्तियों को हो रहा है जिनके पास अपने विकास के साधन पहले से ही उपलब्ध हैं। इस कारण इन वर्गों में भी एक विशेष प्रकार का स्तरीकरण प्रदर्शित हो रहा है। जहाँ एक वर्ग तो निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर होता जा रहा है जबकि दूसरा वर्ग जिसे वास्तव में सहायता की आवश्यकता

है वह इन योजनाओं को उचित ढ़ंग से लागू करने की प्रतिबद्धता के अभाव में अपनी पूर्व स्थिति में ही अथवा उस से भी निम्न स्तर का जीवन यापन कर रहा है।

उपरोक्त के अतिरिक्त संविधान में शैक्षिक रुप से पिछड़े वर्गों यथा स्त्रियों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों एवं अल्पसंख्यकों के शैक्षिक एवं आर्थिक पुनरुत्थान हेतु विशेष प्रयास करने की व्यवस्था भी की गई है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये समय–समय पर संविधान में संशोधन भी किया गया है इनमें सन् 2002 में किया गया 86वाँ संविधान संशोधन महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा मूल अधिकारों में 21। के रुप में शिक्षा को मौलिक अधिकारों के अंतर्गत सम्मिलित कर दिया गया तथा अनुच्छेद 45 के अंतर्गत राज्य को 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा के साथ–साथ ही उनकी देखभाल का भी उत्तरदायित्व प्रदान किया गया हैं। साथ ही मूल कर्तव्यों के अंतर्गत अध्याय 19 में एक नया मूल कर्तव्य ख्ज, जोड़ा गया है जिसके अनुसार माता–पिता एवं संरक्षकों का कर्तव्य होगा कि वे अपने पाल्यों को शिक्षा के उचित अवसर प्रदान करें। इसी क्रम में 27 अगस्त 2009 के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम के रुप में "शिक्षा का अधिकार" विधेयक भी संसद द्वारा पारित करने के पश्चात 1 अप्रैल 2010 को "शिक्षा का अधिकार" अधिनियम को लागू किया जा चुका है। इन सभी प्रयासों सें यह आशा बंधती है कि शीघ्रातातिशीघ भारत पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।

प्राथमिक शिक्षा

शिक्षा व्यवस्था के सूक्ष्म निरीक्षण से यह विदित होता है कि प्रत्येक स्तर की शिक्षा के विकास में कुछ विशेष समस्याएं बाधा के रुप में देश के संपूर्ण क्षेत्रों में विद्यमान हैं यथा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी बाधा "निर्धनता" है, एक "निर्धन" परिवार अपनी आवश्यकताओं में "दो जून की रोटी" जुटाने को प्राथमिकता देता है तत्पश्च. ात वस्त्र एवं आवास संबंधी आवष्यकताओं के लिए। एक निर्धन परिवार अपने बच्चों से यह आशा करता है कि वे भी परिवार के भरण–पोषण में कुछ न कुछ योगदान अवश्य दें और यह उद्देश्य शिक्षा को "तिलांजलि" देकर ही प्राप्त किया जा सकता है। इस उद्देश्य की परिणति बाल श्रम के रुप में प्रदर्शित होती है जिसे हम कूड़ा बीनने वाले बालकों से लेकर हानिकारक उद्योगों में कार्य करने वाले बालकों के रुप में सरलता से देख सकते हैं।

इस समस्या को दूर करने के लिये सरकार द्वारा "मध्याह्न भोजन योजना", "सर्व शिक्षा अभियान" जैसी योजनाओं को प्रारम्भ किया है जो स्वागत योग्य प्रयास है परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ ये योजनाएँ बालकों को विद्यालय तक खींचने में समर्थ हो रही हैं वहीं इनसे एक महत्वपूर्ण हानि यह हो रही है कि इन सब के बीच में इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य जो कि शिक्षा है एक कोने में सिमटती जा रही है क्योंकि छात्रों के विद्यालय आने का उद्देश्य मात्र उदरपूर्ति तथा एकल शिक्षक विद्यालयों के शिक्षक का अधिक समय शिक्षण में व्यतीत न होकर खाद्यान्न को भण्डार गृह से विद्यालय तक लाने व उसके रखरखाव एवं वितरण संबंधी व्यवस्थाओं को देखने में ही व्यतीत हो जा रहा है। क्योंकि राज्य ने आर्थिक साधनों की कमी का हवाला देते हुए शिक्षकों को ही इस कार्यभार का उत्तरदायित्व सौंपा है। उपरोक्त समस्या को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि राज्य अपने वर्तमान संसाधनों का इस प्रकार प्रबंधन करें जिससे बालकों की उदरपूर्ति के साथ–साथ उन्हें गुणवत्तायुक्त शिक्षा भी प्रदान की जा सके।

माध्यमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा के समान ही वर्तमान माध्यमिक शिक्षा में भी कई दोष विद्यमान हैं। इनमें एक प्रमुख दोष है 'तनाव', यह तनाव इस समय इस सीमा तक बढ़ चुका है कि इस स्तर के किशोर 'आत्महत्या' जैसा घातक कदम उठाने में भी नहीं घबरा रहे। इस तनाव के मुख्य कारण निम्न हैं–

1– छात्रों की संपूर्ण योग्यता का आधार वर्ष के अंत में ली जाने वाली बोर्ड परीक्षाओं में अर्जित किये गये अंको के आधार पर निर्धारित किया जाना।
2– माता–पिता द्वारा अपनी अधूरी इच्छाओं, आकांक्षाओं का बोझ अपने बच्चों पर डालना।
3– उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु बच्चों की रुचि एवं क्षमताओं की अवहेलना कर माता–पिता द्वारा स्वयं निर्धारित एवं चयनित विषयों के अध्ययन हेतु बच्चों को बाध्य करना।

छात्रों को इस स्थिति से बचाने के लिए तत्कालीन संप्रग सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय कपिल सिब्बल ने कुछ नवाचारों को अपनाने का सुझाव दिया है, इनमें से कुछ सुझाव इस प्रकार हैं–

1– बोर्ड परीक्षाओं की अनिवार्यता को समाप्त कर इसे वैकल्पिक व्यवस्था बनाना।
2– अंको के स्थान पर ग्रेड प्रदान करना।
3– माध्यमिक स्तर पर छात्रों को अनुत्तीर्ण न कर के निम्नस्तरीय ग्रेड प्रदान करना।
4– आई0 आई0 टी0 की प्रवेश परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये बारहवीं में न्यूनतम 80 प्रतिशत अंकों की अर्हता को अनिवार्य करना।

परंतु उपरोक्त सुझावों के समालोचनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह सुझाव समस्याओं के पूर्ण समाधान में सक्षम नहीं हैं। साथ ही इनमें परस्पर विरोधाभास भी सम्मिलित है। अतः इस समस्या के समाधान हेतु निम्न सुझावों पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा–

1– निर्देशन एवं परामर्शदाताओं की सहायता प्राप्त कर छात्र अपनी क्षमताओं एवं योग. यतानुसार पाठ्यविषयों का चयन स्वयं करें।
2– तनाव पैदा करने वाली लिखित परीक्षाओं के फायदे भी हैं क्योंकि इसी के कारण उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा को ऐसे युवा मिलते हैं जो परिश्रम के महत्व को समझते हैं और मेहनत से नहीं अघाते परंतु एकमात्र लिखित परीक्षा के अंकों को ही छात्र की योग्यता का आधार मान लेना भारी भूल होगी । अतः मूल्यांकन प्रक्रिया वर्ष के अंत में तथा एक ही क्षेत्र से संबंधित न होकर सतत एवं व्यापक होनी चाहिए।
3– माता–पिता को बच्चों पर अपनी इच्छाओं का बोझ न डाल कर उन्हें विषयों के चयन एवं भावी जीवनवृत्ति के क्षेत्र को चयन करने की स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए।

उच्च शिक्षा

वर्तमान समय में भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक असंतोष व्यक्त किया जा रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे केन्द्रीय विश्वविद्यालय में प्रवेश संबंधी कठोर प्रक्रिया के बाद भी हमारे देश का कोई भी शिक्षण संस्थान विश्व के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों में सम्मिलित नहीं है। आई0 आई0 टी0 तथा आई0 आई0 एम0 जैसी संस्थाओं को छोड़ दिया जाय तो शेष उच्च शिक्षा पूर्व के समान ही नीरस,पुस्तकीय और सैद्धान्तिक है जो भारत के लोकतांत्रिक जीवन पद्धति के लक्ष्यों की प्राप्ति में किसी भी प्रकार सहायक नहीं है। वर्तमान समय के विश्वविद्यालयों में ज्ञान को टुक. ड़ों में बांटकर प्रदान किया जा रहा है जो कि अर्थहीन है क्योंकि जब जीवन टुकड़ों में नहीं बंटा हुआ है तो ज्ञान को टुकड़ों में कैसे बांटा जा सकता है। उदाहरणार्थ वैज्ञानिक को नये विचार केवल प्रयोगशाला में कार्य करते समय ही नहीं आते अपितु जीवन की विविध परिस्थितियों का सामना करने पर भी आते हैं। अतः सृजनात्मकता के विकास हेतु यह आवश्यक है कि विषयों के इस पारम्परिक कठोरतापूर्ण विभाजन को शीघ्रता से समाप्त किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त आज हमारे विश्वविद्यालयों में "प्रतिभा" के स्थान पर "निष्ठा" को अधिक महत्व दिया जा रहा है। राजनीति ने यहाँ ऐसे पैर पसार लिये हैं जिस कारण विश्वविद्यालय का सर्वोच्च पद अर्थात कुलपति की गरिमा समाप्त हो गई है, क्योंकि जिस प्रकार इनकी नियुक्ति में "राजनैतिक प्रभाव" प्रमुख होता जा रहा है तथा नेताओं और नौकरशाहों के पीछे इन्हें जिस प्रकार चक्कर काटने पड़ते हैं उसे देखकर अब इस पद को "अकादमिक" नहीं "राजनैतिक" माना जाता है। इसी प्रकार नियुक्तियों में होने वाले भ्रष्टाचार, धन अर्जन करने के उद्देश्य से तेजी से स्थापित किये जा रहे स्ववित्तपोषित संस्थानों एवं डीम्ड विश्वविद्यालयों के कारण शिक्षा की गुणवत्ता में ह्रास ही हो रहा है क्योंकि इन्हें चलाने वाले व्यक्ति वे व्यक्ति हैं जो कल तक होटल, शराब या कोचिंग संस्थानों से सम्बद्ध थे। अतः जाहिर सी बात हे कि इनका उद्देश्य एवं रुचि धन एकत्र करने में है न कि शिक्षा एव इसका गुणात्मक अभिवृद्धि में।

उच्च शिक्षा की उपरोक्त विसंगतियों को दूर करने के लिये प्रो0 यशपाल की अध्यक्षता में गठित कमेटी एवं सैम पित्रोदा की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं जिनमें – "उच्च शिक्षा के क्षेत्र की मौज. ूदा सर्वोच्च संस्थाओं यू0 जी0 सी0 और ए0 आई0 सी0 टी0 ई0 को समाप्त कर" "नेशनल कमीशन फॉर हायर एजुकेशन ऐंड रिसर्च" तथा "उच्च शिक्षा के लिए स्वतंत्र विनियामक प्राधिकरण" का गठन विश्वविद्यालयों को सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त करना, उन्हें अपने छात्रों, शिक्षकों के चयन व पाठ्यक्रम के निर्धारण की स्वतंत्रता प्रदान करना, विषयों के परम्परागत विभाजन को समाप्त करना एवं धन अर्जन के उद्देश्य से स्थापित किये जा रहे शैक्षिक संसाधनों को बंद करना इत्यादि प्रमुख है। यह सभी सुझाव अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं, यद्यपि शिक्षाविदों का एक वर्ग इनसे असहमत भी है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन सुझावों से विवादास्पद अंशों को दूर कर सुझावों को शीघ्रता से लागू किया जाय जिससे आई0 आई0 टी0 और आई. आई. एम. जैसे संस्थाओं के समान ही भारतीय विश्वविद्यालय भी वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान कायम कर सकें। जिस देश में नालन्दा तथा तक्षशिला जैसे शिक्षा के वैश्विक केन्द्र हों वहाँ के बच्चे विदेशों में अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के लिये भारी भरकम शुल्क चुकाने के बाद भी अपमान और प्रताड़ना सहन करने के लिए बाध्य हों इससे बडा देश का और कोई दुर्भाग्य नहीं हो सकता। अतः शिक्षा के इस गंभीर संकट से देश को उबारना आज की पहली जरुरत है। इसलिए इस दिशा में शीघ्रातिशीघ्र सभी समुचित प्रयास किये जाने चाहिये।

REFERENCES

अग्रवाल, ज. सी. (1991), नई शिक्षा नीति, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, । अग्रवाल, उमेश चन्द्र (2006), भारतीय आधुनिक शिक्षा के बदले आयाम, कुरुक्षेत्र, वर्ष 52, अंक 11, पृ0 7–14। अरोड़ा, उदय प्रकाश (2009, जून 26), यों ही नहीं बनते हैं नालन्दा और तक्षशिला, अमर उजाला, नैनीताल संस्करण। द्य कपूर, निमिष (2009), साक्षात्कार : विश्वविद्यालय और समाज के बीच संवाद आवश्यक–यशपाल, योजना, वर्ष 53, अंक 9, पृ0 7–10। चन्सौरिया, मुकेश (2009), भारत में उच्च शिक्षा : समस्याएं एवं समाधान, योजना, वर्ष 53, अंक 9, पृ0 27–30। धर,प्रांजल (2006), शिक्षा : स्थिति और आयाम, कुरुक्षेत्र, वर्ष 52, अंक 11, पृ0 4–6। नांगिया, विनीता दावरा (2009 नवम्बर 25), प्रीच मत करो पापा, प्लीज, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली संस्करण। पनगड़िया, अरविंद (2009, नवम्बर 6), यूजीसी के नियंत्रण से बाहर करें हायर एजुकेशन, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली संस्करण। द्य पाण्डे, जयनारायण (2005), भारत का संविधान, इलाहाबाद : सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी । पाठक, पी0 डी0 (1976), भारतीय शिक्षा एवं उसकी समस्याएं, द्वितीय संस्करण, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर । पाठक, पी0 डी0 एवं त्यागी, जी0 एस0 (1976), शिक्षा आयोग, प्रथम संस्करण, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर । पाण्डे, रामशकल (1991), नई शिक्षा नीति, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर । पित्रोदा, सैम (2009), ज्ञानवान समाज के निर्माण की जरूरत, योजना, वर्ष 53, अंक 9,पृ0 5–6। प्रो. यशपाल से साक्षात्कार 5 जुलाई 2009 ज्ञान को मुक्त कीजिए, अमर उजाला, नैनीताल संस्करण। प्रो. यशपाल से साक्षात्कार 12 जुलाई 2009 भरत कभी न बने अमेरिका, दैनिक जागरण, नैनीताल संस्करण। बसु, दुर्गादास (1997), भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली : प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया । द्य मिश्र, राम मिलन (2006), प्राथमिक शिक्षा : विजन 2020, कुरुक्षेत्र, वर्ष 52, अंक 11, पृ0 15–20। रस्तोगी, कृष्णा गोपाल (1979), भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन, शिवाजी रोड़। वाधवा, ममता (2007), लीगल पर्सपेक्टिव आफ एजुकेशन विद रेफरेन्स टू राइट टू एजुकेशन इन इण्डिया, एम0 फिल0 अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय। द्य विधि और न्याय मंत्रालय (1996), भारत का संविधान जून (1996) को यथाविद्यमान, भारत सरकार विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, राजभाषा खण्ड। शुक्ला, पी0 डी0 (1998), द न्यू एजुकेशन पॉलिसी, स्टरलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड। द्य संपादकीय (2009, जून 25) शिक्षा की दरिद्रता हटाएं, अमर उजाला, नैनीताल संस्करण। द्य सुनील (2009), शिक्षा अधिकार अधिनियम की समीक्षा, योजना, वर्ष 53, अंक 9, पृ0 17–19A |